जैन दर्शन- स्याद्वाद

डॉ. विजय कुमार
दर्शनशास्त्र विभाग
एल. एस. कॉलेज, मुजफ्फरपुर

जैन दर्शन तत्त्वमीमांसीय व्याख्या में अनेकान्तवाद को प्रस्तुत करता है। अनेकान्तवाद जैन-दर्शन की आधारशिला है। जैन तत्त्वज्ञान का महल इसी अनेकान्तवाद के सिद्धान्त की आधारशिला पर टिका है। तत्त्वज्ञान का विवेचन करते हुए भगवान महावीर ने कहा है - वस्तु के अनन्त धर्म होते हैं। इन वस्तु-धर्मों में से व्यक्ति अपने इच्छित धर्मों का समय-समय पर कथन करता है। वस्तु के जितने धर्मों का कथन हो सकता है, वे सब वस्तु के अन्दर रहते हैं। ऐसा नहीं है कि व्यक्ति अपनी इच्छा से उन धर्मों को पदार्थ में आरोपण कर देता है। अनन्त या अनेक धर्मों के कारण ही वस्तु अनन्त धर्मात्मक कही जाती है। वस्तु के इन अनन्त धर्मों के दो प्रकार होते हैं - गुण तथा पर्याय। जो धर्म वस्तु के स्वरूप का निर्धारण करते हैं अर्थात् जिनके बिना वस्तु का अस्तित्व कायम नहीं रह सकता उन्हें गुण कहते हैं, यथा- मनुष्य में मनुष्यत्व, सोना में सोनापन। मनुष्य में यदि मनुष्यत्व न हो तो वह और कुछ हो सकता है, मनुष्य नहीं। वैसे ही यदि सोना में सोनापन न हो तो वह अन्य कोई द्रव्य होगा, सोना नहीं। गुण वस्तु में स्थायी रूप से रहता है। वह कभी नष्ट नहीं होता और न बदलता ही है। क्योंकि उसके नष्ट हो जाने से वस्तु नष्ट हो जाएगी, बदल जाने से वस्तु बदल जाएगी। गुण वस्तु का आन्तरिक धर्म होता है। जो धर्म वस्तु के बाह्याकृतियों अर्थात् रूप, रंग को निर्धारित करते हैं, जो बदलते रहते हैं, उत्पन्न और नष्ट होते रहते हैं, उन्हें पर्याय कहते हैं। जैसे - मनुष्य कभी बच्चा, कभी युवा और कभी बूढ़ा रहता है, कोई स्त्री है तो कोई पुरुष, कोई मोटा है तो कोई पतला। वैसे ही सोने को कभी अंगूठी, कभी माला, कभी कर्णफूल के रूप में देखा जाता है। गुण स्थायी रूप से वस्तु में रहता है। मनुष्य बच्चा हो या बूढ़ा, स्त्री हो या पुरुष, मोटा हो या दुबला, उसमें मनुष्यत्व रहेगा ही। किन्तु जब कोई व्यक्ति बालक से युवा होता है तो उसका बालपन नष्ट हो जाता है और युवापन उत्पन्न होता है। ठीक इसी प्रकार सोना का अंगूठी वाला रूप नष्ट होता है तो माला का रूप बनता है, माला का रूप नष्ट होता है तो कर्णफूल का रूप बनता है। ये बदलने वाले धर्म हमेशा उत्पन्न एवं नष्ट होते रहते हैं और गुण स्थिर रहता है। अत: जगत के सभी पदार्थ उत्पत्ति, स्थिति और विनाश - इन तीन धर्मों से युक्त हैं। एक ही साथ एक ही वस्तु में तीनों धर्मों को देखा जा सकता है।

स्याद्वाद

अनेकान्तवाद के व्यावहारिक पक्ष को स्याद्वाद के नाम से विभूषित किया जाता है। स्याद्वाद अनेकान्तवाद का ही विकास मात्र है। स्याद्वाद एवं अनेकान्तवाद दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इसका कारण यह है कि स्याद्वाद में जिस पदार्थ का कथन होता है, वह अनेकान्तात्मक है। दोनों में यदि अन्तर है तो केवल शब्दों का। स्याद्वाद में 'स्यात्' शब्द की प्रधानता है तो अनेकान्तवाद में 'अनेकान्त' की। किन्तु मूलत: दोनों एक ही हैं।

स्यात् शब्द के दो अर्थ देखने को मिलते हैं - पहला अनेकान्तवाद और दूसरा अनेकान्त को कथन करने की भाषा शैली। इस प्रकार हम देखते हैं कि जैन दार्शनिकों के अनेकान्त एवं स्यात् दोनों शब्दों का एक ही अर्थों में प्रयोग किया है। किन्तु इन दोनों शब्दों के पीछे एक ही हेतु रहा है और वह है वस्तु की अनेकान्तात्मकता। यह अनेकान्तात्मकता अनेकान्तवाद शब्द से भी प्रकट होती है और स्याद्वाद से भी। अत: स्याद्वाद और अनेकान्तवाद दोनों ही एक हैं। यद्यपि ये दोनों पर्यायवाची हैं, फिर भी स्याद्वाद शब्द निर्दृष्ट भाषा शैली का प्रतीक है।

स्याद्वाद विभिन्न दृष्टिकोणों से वस्तु का प्रतिपादन करके पूरी वस्तु पर एक ही धर्म के पूर्ण अधिकार का निषेध करता है। वह कहता है कि वस्तु पर सब धर्मों का समान रूप से अधिकार है। विशेषता यही है कि जिस समय धर्म के प्रतिपादन की विवक्षा होती है, उस समय उस धर्म को मुख्य रूप से ग्रहण करके अन्य अविवक्षित धर्मों को गौण

कर दिया जाता है। एक दृष्टांत द्वारा द्वारा इसे समझा जा सकता है। जिस प्रकार दधि मंथन करने वाली गोपी मथाने की रस्सी के एक छोर को खींचती है और दूसरे छोर को ढ़ीला कर देती है तथा रस्सी के आकर्षण और शिथिलीकरण के द्वारा दधि का मंथन करके इष्ट तत्त्व घृत को प्राप्त करती है। इसी प्रकार स्याद्वाद नीति भी एक धर्म के आकर्षण और शेष धर्मों के शिथिलीकरण द्वारा अनेकान्तात्मक अर्थ की सिद्धि करती है।

वस्तु के अनन्त धर्मात्मक कथन को हम एक साथ वाणी के माध्यम से अभिव्यक्त नहीं कर सकते, क्योंकि शब्दों की शक्ति सीमित है। वाणी द्वारा हम एक समय में वस्तु के एक ही धर्म का कथन कर सकते हैं। क्योंकि वस्तु के अनन्त धर्मों में से एक विवक्षित धर्म मुख्य होता है जिसका प्रतिपादन किया जाता है। शेष अन्य धर्म गौण होते हैं, क्योंकि उनके सम्बन्ध में अभी कुछ नहीं कहा जा रहा। कथन की मुख्यता और गौणता वस्तु में विद्यमान धर्मों की अपेक्षा नहीं, किन्तु वक्ता की इच्छा पर निर्भर करता है। किसी वस्तु को देखते ही उसके रंग, रूप, मोटाई, चौड़ाई आदि अनेक आयामों का ज्ञान एक साथ प्राप्त किया जा सकता है। लेकिन उसकी अभिव्यक्ति एक साथ नहीं की जा सकती है। ज्ञेय अनंत है, ज्ञान अनंत है, किन्तु वाणी अनंत नहीं है। अत: ज्ञान और अभिव्यक्ति की सीमाओं को बताना ही स्याद्वाद का उद्देश्य है।

अनेकान्तवाद द्वारा स्वीकृत विरोधी युगल को स्याद्वाद अपनी सापेक्ष शैली में अभिव्यक्ति देता है। लेकिन अनेकान्त और स्याद्वाद का प्रयोग करते समय यह ध्यान देना आवश्यक है कि हम जिन परस्पर विरोधी धर्मों का सत्ता में प्रतिपादिन करते हैं उनकी सत्ता वस्तु में संभावित होनी चाहिए, अन्यथा अनेकान्त का सिद्धान्त गलत हो जाएगा। यदि हम कहते हैं कि कथंचित् जीव चेतन है और कथंचित् जीव अचेतन भी है, तो यहाँ जीव में अचेतनत्व की संभावना नहीं बनती। चेतनत्व और अचेतनत्व परस्पर विरोधी धर्म हैं। नित्यत्व और अनित्यत्व विरोधी नहीं हैं, बल्कि विरोधी से प्रतीत होने वाले धर्म हैं। इनकी सत्ता द्रव्य में एक साथ पाई जाती है।

स्याद्वाद ही एक ऐसा सिद्धान्त है जो यह द्योतित करता है कि ज्ञान और वाणी की सीमा को ध्यान में रखते हुए सापेक्ष कथन ही सत्य को उद्घाटित कर सकता है। यद्यपि सर्वज्ञ वस्तु के काल एवं अव्यक्त अनेक धर्मों को जान सकता है परन्तु वह भी वाणी द्वारा उन सबको एक साथ अभिव्यक्त करने में असमर्थ होता है, क्योंकि वाणी की अपनी सीमा होती है वह उसका अतिक्रमण नहीं कर सकती। यद्यपि उन समस्त धर्मों का प्रतिपादन वाणी द्वारा संभव है, किन्तु शब्द-सामर्थ्य सीमित होता है, फलत: प्रत्येक प्राक्कथन किसी एक विशिष्ट गुण धर्म को ही अभिव्यक्त कर पाता है, कारण कि वचन-व्यापार क्रम से ही हो पाता है। वस्तुत: वस्तु तत्त्व का यथार्थ प्रतिपादन क्रमपूर्वक एवं सापेक्षरूप से ही संभव है। यही अनेकान्त की स्याद्वादात्मक शैली है।

अनेकान्तवाद और सप्तभंगी

वस्तु का अनन्तात्मक स्वरूप स्याद्वाद द्वारा मुखरित होता है जिसके कारण स्याद्वाद को अनेकान्तवाद का वाचक कहा जाता है और स्याद्वाद का भाषायी रूप जिन प्रकथनों द्वारा अभिव्यक्ति को प्राप्त होता है उसे सप्तभंगी कहते हैं। सप्तभंगी एक ऐसा सिद्धान्त है जो वस्तु के एक अंश का किन्तु यथार्थ कथन करता है। अनेकान्तवाद, स्याद्वाद और सप्तभंगी तीनों एक दूसरे के पूरक हैं। सप्तभंगी को परिभाषित करते हुए प्रश्नवश वस्तु में अविरोध रूप से विधि-निषेध अर्थात् अस्ति-नास्ति की कल्पना सप्तभंगी कही जाती है

सप्तभंगी का प्रत्येक भंग वक्ता के कथन को मर्यादित व संतुलित करता है। वह संदेह एवं अनिश्चय का निराकरण कर वस्तु के किसी गुण-धर्म के सम्बन्ध में एक निश्चित स्थिति को अभिव्यक्त करता है कि वस्तु अमुक दृष्टि से अमुक धर्मवाली है। व्यावहारिक स्तर पर हमारी वाणी अस्ति-नास्ति की सीमाओं से बँधी है। हमारा कोई भी प्रकथन या तो अस्तिवाचक होता है या फिर नास्तिवाचक। यदि हम इसका अतिक्रमण करते हैं तो हमें अव्यक्तता का सहारा लेना पड़ता है। अवक्तव्य का अभिप्राय है कि अस्ति-नास्ति दोनों प्रकारों की अपेक्षा से वाणी को शब्दों द्वारा

अभिव्यक्ति प्रदान नहीं कर सकना। विधि और निषेध दोनों को हम एक साथ नहीं कह सकते। इसी को अवक्तव्य नामक तीसरा प्रकार कहते हैं। इस प्रकार मूल भंग तीन ही बनते हैं। यदि हम गणित की दृष्टि से भी विचार करें तो उसके लॉ ऑफ परमुटेशन एण्ड कम्बीनेशन सिद्धान्त (Permutations and Combinations Theory) के अनुसार तीन के अपुनरूक्त विकल्प सात ही बन सकते हैं। न छः हो सकते हैं और न आठ।

यहाँ यह शंका हो सकती हैं कि वस्तु के अनंत धर्म हैं तो भंग भी तो अनंत होंगे, फिर सात ही क्यों? सामान्य रूप से यह शंका निर्मूल है, क्योंकि वस्तु के प्रत्येक पर्याय की अपेक्षा से एक पर्याय के सात ही भंग होंगे। वस्तु के अन्यान्य पर्याय की अपेक्षा से अन्यान्य भंग हो सकते हैं लेकिन एक पर्याय के भंग सात हो होंगे। प्रश्न सात प्रकार के होते हैं, अतः उसके उत्तर भी सात होंगे। प्रश्न सात हैं तो जिज्ञासायें भी सात ही होंगी। जिज्ञासा सात होंगी तो वस्तु के एक धर्म के विषय में संदेह भी सात हो होंगे। संदेह सात इसलिए होंगे कि विषयभूत सात प्रकार के ही हो सकते हैं। सात भंग निम्न हैं-

१. **स्यादस्ति**- प्रत्येक वस्तु विधि धर्म से कथंचित् अस्तित्व रूप ही है।

२. **स्यान्नास्ति**- प्रत्येक वस्तु निषेध धर्म से कथंचित् नास्तित्व रूप ही है।

३. **स्यादस्ति च नास्ति**- प्रत्येक वस्तु क्रम से विधि-निषेध दोनों धर्मों से कथंचित् अस्तित्व और नास्तित्व दोनों रूप ही है।

४. **स्यात् अवक्तव्य**- प्रत्येक वस्तु एक साथ विधि-निषेध से कथंचित् अवक्तव्य ही है।

५. **स्यादस्ति च अवक्तव्य**- प्रत्येक वस्तु विधि तथा एक साथ विधि-निषेध रूप धर्मों से कथंचित् अस्तित्व और अवक्तव्य रूप ही है।

६. **स्यान्नास्ति च अवक्तव्य**- प्रत्येक वस्तु निषेध तथा एक साथ विधि-निषेध धर्मों से कथंचित् नास्तित्व और अवक्तव्य रूप ही है।

७. **स्यादस्ति स्यान्नास्ति च अवक्तव्य**- प्रत्येक वस्तु क्रम से विधि, निषेध तथा एक साथ विधि-निषेध धर्मों से कथंचित् अस्तित्व, नास्तित्व और अवक्तव्य रूप ही है।